भाष्य और भाष्यकार

डॉ. मोहनलाल मेहता...

आगमों की प्राचीनतम पद्यात्मक टीकाएँ निर्युक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। निर्युक्तियों की व्याख्यान-शैली बहुत गूढ़ एवं संकोचशील है। किसी भी विषय का जितने विस्तार से विचार होना चाहिए, उसका उसमें अभाव है। इसका कारण यही है कि उनका मुख्य उद्देश्य पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करना है, न कि किसी विषय का विस्तृत विवेचन। यही कारण है कि निर्युक्तियों की अनेक बातें बिना आगे की व्याख्याओं की सहायता के सरलता से समझ में नहीं आतीं। निर्युक्तियों के गूढ़ार्थ को प्रकट रूप में प्रस्तुत करने के लिए आगे के आचार्यों ने उन पर विस्तृत व्याख्याएँ लिखना आवश्यक समझा। इस प्रकार निर्युक्तियों के आधार पर अथवा स्वतंत्र रूप से जो पद्यात्मक व्याख्याएँ लिखी गईं वे भाष्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। निर्युक्तियों की भाँति भाष्य भी प्राकृत में ही हैं।

भाष्य

जिस प्रकार प्रत्येक आगम ग्रन्थ पर निर्युक्ति न लिखी जा सकी उसी प्रकार प्रत्येक निर्युक्ति पर भाष्य भी नहीं लिखा गया। निम्नलिखित आगम ग्रन्थों पर भाष्य लिखे गए हैं – १. आवश्यक २. दशवैकालिक ३. उत्तराध्ययन ४. बृहत्कल्प ५. पंचकल्प ६. व्यवहार ७. निशीथ ८. जीतकल्प ९. ओघनिर्युक्ति १०. पिण्डनिर्युक्ति।

आवश्यक-सूत्र पर तीन भाष्य लिखे गए हैं – १. मूलभाष्य २. भाष्य और ३. विशेषावश्यकभाष्य। प्रथम दो भाष्य बहुत ही संक्षिप्त रूप में लिखे गए और उनकी अनेक गाथाएँ विशेषावश्यकभाष्य में सम्मिलित कर ली गईं। इस प्रकार विशेषावश्यकभाष्य को तीनों भाष्यों का प्रतिनिधि माना जा सकता है, जो आज भी विद्यमान है। यह भाष्य पूरे आवश्यकसूत्र पर न होकर केवल उसके प्रथम अध्ययन सामयिक पर है। एक अध्ययन पर होते हुए भी इसमें ३६०३ गाथाएँ हैं। दशवैकालिकभाष्य में ६३ गाथाएँ हैं। उत्तराध्ययनभाष्य भी बहुत छोटा है। इसमें केवल ४५ गाथाएँ हैं। बृहकल्प पर दो भाष्य हैं – बृहत् और लघु। बृहद्भाष्य पूरा उपलब्ध नहीं है। लघुभाष्य में ६४९० गाथाएँ हैं। पंचकल्प-महाभाष्य की गाथासंख्या २५७४ है। व्यवहारभाष्य में ४६२९ गाथाएँ हैं। निशीथभाष्य में लगभग ६५०० गाथाएँ हैं। जीतकल्पभाष्य की गाथासंख्या २६०६ है। ओघनिर्युक्ति पर दो भाष्य हैं जिनमें से एक की गाथासंख्या ३२२ तथा दूसरे की २५१७ है। पिण्डनिर्युक्ति-भाष्य में ४६ गाथाएँ हैं।

भाष्यकार

उपलब्ध भाष्यों की प्रतियों के आधार पर केवल दो भाष्यकारों के नाम का पता लगता है। वे हैं आचार्य जिनभद्र और संघदासगणि। आचार्य जिनभद्र ने दो भाष्य लिखे – विशेषावश्यकभाष्य और जीतकल्पभाष्य। संघदासगणि के भी दो भाष्य हैं – बृहत्कल्प-लघुभाष्य और पंचकल्प-महाभाष्य।

आचार्य जिनभद्र

आचार्य जिनभद्र[१] का अपने महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के कारण जैन-परम्परा के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है। इतना होते हुए भी आश्चर्य इस बात का है कि उनके जीवन की घटनाओं के विषय में जैन-ग्रन्थों में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। उनके जन्म और शिष्यत्व के विषय में परस्पर विरोधी उल्लेख मिलते हैं। ये उल्लेख बहुत प्राचीन नहीं है अपितु १५वीं या १६वीं शताब्दी की पट्टावलियों में हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य जिनभद्र को पट्टपरंपरा में सम्यक् स्थान नहीं मिला। उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों तथा उनके आधार पर लिखे गए विवरणों को देखकर ही बाद के आचार्यों ने उन्हें उचित महत्त्व दिया तथा आचार्य-परम्परा में सम्मिलित करने का प्रयास किया। चूँकि इस प्रयास में वास्तविकता की मात्रा अधिक न थी अतः यह स्वाभाविक है कि विभिन्न आचार्यों के उल्लेखों में मतभेद हो। यही कारण है कि उनके संबंध में यह भी उल्लेख मिलता है कि वे आचार्य हरिभद्र के पट्ट पर बैठे।

आचार्य जिनभद्रकृत विशेषावश्यकभाष्य की प्रति शक संवत् ५३१ में लिखी गई तथा वलभी के एक जैन-मंदिर में समर्पित की गई। इस घटना से यह प्रतीत होता है कि आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनभद्र का वलभी से कोई संबंध अवश्य होना चाहिए। आचार्य जिनप्रभ लिखते हैं कि आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण ने मथुरा में देवनिर्मित स्तूप के देव की आराधना एक पक्ष की तपस्या द्वारा की और दीमक द्वारा खाए हुए महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया।[२] इससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य जिनभद्र का संबंध वलभी के अतिरिक्त मथुरा से भी है।

डॉ. उमाकांत प्रेमानंद शाह ने अंकोट्टक-अकोटा गाँव से प्राप्त हुई दो प्रतिमाओं के अध्ययन के आधार पर यह सिद्ध किया है कि ये प्रतिमाएँ ई. सन् ५५० से ६०० तक के काल की हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि इन प्रतिमाओं के लेखों में जिन आचार्य जिनभद्र का नाम है, वे विशेषावश्यकभाष्य के कर्ता क्षमाश्रमण आचार्य जिनभद्र ही हैं। उनकी वाचना के अनुसार एक मूर्ति के पद्मासन के पिछले भाग में 'ॐ देवधर्मोयं निवृत्तिकुले जिनभद्रवाचनाचार्यस्य' ऐसा लेख है और दूसरी मूर्ति के आभामंडल में 'ॐ निवृत्तिकुले जिनभद्र वाचनाचार्यस्य' ऐसा लेख है।[३] इन लेखों से तीन बातें फलित होती हैं।१. आचार्य जिनभद्र ने इन प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित किया होगा २. उनके कुल का नाम निवृत्तिकुल था ३. उन्हें वाचनाचार्य कहा जाता था। चूँकि ये मूर्तियाँ अंकोट्टक में मिली है, अतः यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय भड़ौंच के आसपास भी जैनों का प्रभाव रहा होगा और आचार्य जिनभद्र ने इस क्षेत्र में भी विहार किया होगा। उपर्युक्त उल्लेखों में आचार्य जिनभद्र को क्षमाश्रमण न कहकर वाचनाचार्य इसलिए कहा गया है कि परम्परा के अनुसार वादी, क्षमाश्रमण, दिवाकर तथा वाचक एकार्थक शब्द माने गए हैं।[४] वाचक और वाचनाचार्य भी एकार्थक हैं, अतः वाचनाचार्य और क्षमाश्रमण शब्द वास्तव में एक ही अर्थ के सूचक हैं।[५] इनमें से एक का प्रयोग करने से दूसरे का प्रयोजन भी सिद्ध हो ही जाता है।

आचार्य जिनभद्र निवृत्तिकल के थे। इसका प्रमाण उपर्युक्त लेखों के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता। यह निवृत्तिकुल कैसे प्रसिद्ध हुआ, इसके लिए निम्नांकित कथानक का आधार लिया जा सकता है।

भगवान महावीर के १७वें पट्ट पर आचार्य वज्रसेन हुए थे।

उन्होंने सोपारक नगर के सेठ जिनदत्त और सेठानी ईश्वरी के चार पुत्रों को दीक्षा दी थी। उनके नाम इस प्रकार थे - नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर। आगे जाकर इनके नाम से भिन्न-भिन्न चार प्रकार की परम्पराएँ प्रचलिति हुईं और उनकी नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति तथा विद्याधर कुलों के रूप में प्रसिद्ध हुई।[६]

इन तथ्यों के अतिरिक्त उनके जीवन से संबंधित और कोई विशेष बात नहीं मिलती। हाँ, उनके गुणों का वर्णन अवश्य उपलब्ध होता है। जीतकल्पचूर्णि के कर्ता सिद्धसेनगणि अपनी चूर्णि के प्रारंभ में आचार्य जिनभद्र की स्तुति करते हुए उनके गुणों का इस प्रकार वर्णन करते हैं -

'जो अनुयोगधर, युगप्रधान, प्रधान ज्ञानियों से बहुमत, सर्व श्रुति और शास्त्र में कुशल तथा दर्शन-ज्ञानोपयोग के मार्गरक्षक हैं। जिस प्रकार कमल की सुगंध के वश में होकर भ्रमर कमल की उपासना करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानरूप मकरंद के पिपासु मुनि जिनके मुखरूप निर्झर से प्रवाहित ज्ञानरूप अमृत का सर्वदा सेवन करते हैं।

स्व-समय तथा पर-समय के आगम, लिपि, गणित, छन्द और शब्दशास्त्रों पर किए गए व्याख्यानों से निर्मित जिनका अनुपम यशपटह दसों दिशाओं में बज रहा है। जिन्होंने अपनी अनुपम बुद्धि के प्रभाव से ज्ञान, ज्ञानी, हेतु, प्रमाण तथा गणधरवाद का सविशेष विवेचन विशेषावश्यक में ग्रन्थनिबद्ध किया है। जिन्होंने छेदसूत्रों के अर्थ के आधार पर पुरुषविशेष के पृथक्करण के अनुसार प्रायश्चित्त की विधि का विधान करने वाले जीतकल्पसूत्र की रचना की है। ऐसे पर-समय के सिद्धान्तों में निपुण, संयमशील श्रमणों के मार्ग के अनुगामी और क्षमाश्रमणों में निधानभूत जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण को नमस्कार हो।'[७]

इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि जिनभद्रगणि आगमों के अद्वितीय व्याख्याता थे, 'युगप्रधान' पद के धारक थे, तत्कालीन प्रधान श्रुतधर भी इनका बहुमान करते थे, श्रुत और अन्य शास्त्रों के कुशल विद्वान् थे। जैन-परम्परा में जो ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग का विचार किया गया है, उसके ये समर्थक थे। इनकी सेवा में अनेक मुनि ज्ञानाभ्यास करने के लिए सदा उपस्थित रहते थे। भिन्न-भिन्न दर्शनों के शास्त्र, लिपिविद्या, गणितशास्त्र, छंदःशास्त्र, शब्दशास्त्र आदि के ये अनुपम पंडित थे। इन्होंने विशेषावश्यकभाष्य और जीतकल्पसूत्र की रचना की थी। ये पर-सिद्धान्त में निपुण, स्वाचारपालन में प्रवण और सर्व जैन श्रमणों में प्रमुख थे। उत्तरवर्ती आचार्यों ने भी आचार्य जिनभद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का बहुमानपूर्वक नामोल्लेख किया है इनके लिये भाष्यसुधाम्भोधि, भाष्यपीयूषपंथोधि, भगवान् भाष्यकार दुःषमान्धकारनिमग्नजिनवचनप्रदीपप्रतिम दलितकुवादिप्रवाद, प्रशस्यभाष्यशस्य काश्यपीकल्प, त्रिभुवनजनप्रथितवचनोप निषद्वेदी, सन्देहसन्दोहशैलशृंगभंगदम्भोलि आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है।

आचार्य जिनभद्र के समय के विषय में मुनि श्री जिनविजयजी का मत है कि उनकी मुख्य कृति विशेषावश्यकभाष्य की जैसलमेर स्थित प्रति के अंत में मिलने वाली दो गाथाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस भाष्य की रचना विक्रम संवत् ६६६ में हुई। वे गाथाएँ इस प्रकार हैं –

पच सता इगतीसा सगणिवकालस्स वट्टमाणस्स।
तो चेत्तपुण्णिमाए बुधदिण सातिंमि णक्खत्ते।।

रज्जे णु पालणपरे सी (लाइ) च्चम्मि णरवरिन्दम्मि।
वलभीणगरीए इमं महवि... मि जिणभणे।।

मुनि श्री जिनविजयजी ने इन गाथाओं का अर्थ इस प्रकार है – शक संवत् ५३१ (विक्रम संवत् ६६६) में वलभी में जिस समय शीलादित्य राज्य करता था उस समय चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, बुधवार और स्वाति नक्षत्र में विशेषावश्यकभाष्य की रचना पूर्ण हुई।

पं. श्री दलसुख मालवणिया इस मत का विरोध करते हैं। उनकी मान्यता है कि उपर्युक्त मत मूल गाथाओं से फलित नहीं होता। उनके मतानुसार इन गाथाओं में रचनाविषयक कोई उल्लेख नहीं है। वे कहते हैं कि खंडित अक्षरों को हम यदि किसी मंदिर का नाम मान लें, तो इन दोनों गाथाओं में कोई क्रियापद नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में उसकी शक संवत् ५३१ में रचना हुई, ऐसी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अधिक संभव यह है कि वह प्रति उस समय लिखी जाकर उस मंदिर में रखी गई हो। इस मत की पुष्टि के लिए कुछ प्रमाण भी दिए जा सकते हैं –

१. ये गाथाएँ केवल जैसलमेर की प्रति में ही मिलती हैं, अन्य किसी प्रति में नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि ये गाथाएँ मूलभाष्य की न होकर प्रति लिखी जाने तथा उक्त मंदिर में रखी जाने के समय की सूचक हैं। जैसलमेर की प्रति मंदिर में रखी गई प्रति के आधार पर लिखी गई होगी।

२. यदि इन गाथाओं को रचनाकालसूचक माना जाए, तो इनकी रचना आचार्य जिनभद्र ने की है, यह भी मानना ही पड़ेगा। ऐसी स्थिति में इनकी टीका भी मिलनी चाहिए, परन्तु बात ऐसी नहीं है। आचार्य जिनभद्र द्वारा प्रारंभ में की गई विशेषावश्यकभाष्य की सर्वप्रथम टीका में अथवा कोट्याचार्य और मलधारी हेमचन्द्र की टीकाओं में इन गाथाओं की टीका नहीं मिलती। इतना ही नहीं इन गाथाओं के अस्तित्व की सूचना तक नहीं है।

इन प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि ये गाथाएँ आचार्य जिनभद्र ने न लिखी हों अपितु उस प्रति की नकल करने-कराने वालों ने लिखी हों। ऐसी स्थिति में यह भी स्वतः सिद्ध है कि इन गाथाओं में निर्दिष्ट समय रचनासमय नहीं अपितु प्रतिलेखनसमय है। कोट्याचार्य के उल्लेख से यह भी निश्चित है कि आचार्य जिनभद्र की अंतिम कृति विशेषाश्यकभाष्य है। इस भाष्य की स्वोपज्ञ टीका उनकी मृत्यु हो जाने के कारण पूर्ण न हो सकी।[८]

यदि विशेषावश्यकभाष्य की जैसलमेर स्थित उक्त प्रति का लेखन समय तक संवत् ५३१ अर्थात् विक्रम संवत् ६६६ माना जाए, तो विशेषावश्यकभाष्य का रचना समय इससे पूर्व ही मानना पड़ेगा। यह भी हम जानते हैं कि विशेषावश्यकभाष्य आचार्य जिनभद्र की अंतिम कृति थी और उसकी स्वोपज्ञ टीका भी उनकी मृत्यु के कारण अपूर्ण रही, ऐसी दशा में यदि यह माना जाए कि जिनभद्र का उत्तरकाल विक्रम संवत् ६५०-६६० के आसपास रहा होगा, तो अनुचित नहीं है।

आचार्य जिनभद्र ने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की है। १. विशेषावश्यकभाष्य (प्राकृत - पद्य) २. विशेषावश्यकभाष्यस्वोपज्ञवृत्ति (अपूर्ण-संस्कृत-गद्य) ३. बृहत्संग्रहणी (प्राकृत - पद्य) ४. बृहत्क्षेत्रसमास (प्राकृत-पद्य ५. विशेषणवती (प्राकृत-पद्य) ६. जीतकल्प (प्राकृत-पद्य) ७. जीत कल्पभाष्य (प्राकृत पद्य) ८. अनुयोगद्वारचूर्णि (प्राकृत-गद्य)[९] ९. ध्यानशतक (प्राकृत-पद्य)। अन्तिम ग्रन्थ अर्थात् ध्यानशतक के कर्तृत्व के विषय में अभी विद्वानों को संदेह है।

संघदासगणि

संघदासगणि भी भाष्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके दो भाष्य उपलब्ध हैं- बृहत्कल्प-लघुभाष्य और पंचकल्प महाभाष्य। मुनि श्री पुण्यविजयजी के मतानुसार संघदासगणि नाम के दो आचार्य हुए हैं – एक वसुदेवहिंडि प्रथम खण्ड के प्रणेता और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे बृहत्कल्प-लघुभाष्य तथा पँचकल्प-महाभाष्य के प्रणेता। ये दोनों आचार्य एक न होकर भिन्न-भिन्न हैं, क्योंकि वसुदेवहिंडि-मध्यम खण्ड के कर्ता आचार्य धर्मसेनगणि महत्तर के कथनानुसार वसुदेवहिंडि-प्रथम खंड के प्रणेता संघदासगणि 'वाचक' पद से विभूषित थे, जबकि भाष्यप्रणेता संघदासगणि 'क्षमाश्रमण' पदालंकृत हैं।[१०] आचार्य जिनभद्र का परिचय देते समय हमने देखा है कि केवल पदवी-भेद से व्यक्ति-भेद की कल्पना नहीं की जा सकती। एक ही व्यक्ति विविध समय में विविध पदवियाँ धारण कर सकता है। इतना ही नहीं, एक ही समय में एक ही व्यक्ति के लिए विभिन्न दृष्टियों से विभिन्न पदवियों का प्रयोग किया जा सकता है।

कभी-कभी तो कुछ पदवियाँ परस्पर पर्यायवाची भी बन जाती हैं। ऐसी दशा में केवल 'वाचक' और 'क्षमाश्रमण' पदवियों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इन पदवियों को धारण करने वाले संघदासगणि भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। मुनि श्री पुण्य विजयजी ने भाष्यकार तथा वसुदेवहिंडिकार आचार्यों को भिन्न-भिन्न सिद्ध करने के लिए एक और हेतु दिया है, जो विशेष बलवान है। आचार्य जिनभद्र ने अपने विशेषणवती ग्रन्थ में वसुदेवहिंडि नामक ग्रन्थ का अनेक बार उल्लेख किया है। इतना ही नहीं अपितु वसुदेवहिंडि प्रथम खण्ड में चित्रित ऋषभदेव-चरित की संग्रहणी गाथाएँ बनाकर उनका अपने ग्रन्थ में समावेश भी किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वसुदेवहिंडि प्रथम खण्ड के प्रणेता संघदागणि आचार्य जिनभद्र के पूर्ववर्ती हैं।[११] भाष्यकार संघदासगणि भी आचार्य जिनभद्र के पूर्ववर्ती ही हैं।

अन्य भाष्यकार

आचार्य जिनभद्र और संघदासगणि को छोड़कर अन्य भाष्यकारों के नाम का पता अभी तक नहीं लग पाया है। यह तो निश्चित है कि इन दो भाष्यकारों के अतिरिक्त अन्य भाष्यकार भी हुए हैं, जिन्होंने व्यवहारभाष्य आदि की रचना की है। मुनिश्री पुण्यविजयजी के मतानुसार कम से कम चार भाष्यकार तो हुए ही हैं। उनका कथन है कि एक श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, दूसेर श्री संघदासगणि क्षमाश्रमण, तीसरे व्यवहारभाष्य आदि के प्रणेता और चौथे बृहत्कल्प बृहद्भाष्य आदि के रचयिता - इस प्रकार सामान्यतया चार आगमिक भाष्यकार हुए हैं। प्रथम दो भाष्यकारों के नाम तो हमें मालूम ही हैं। बृहत्कल्प-बृहद्भाष्य के प्रणेता, जिनका नाम अभी तक अज्ञात है, बृहत्कल्पचूर्णिकार तथा बृहत्कल्पविशेषचूर्णिकार से भी पीछे हुए हैं। इसका कारण यह है कि बृहत्कल्पलघुभाष्य की १६६१वीं गाथा में प्रतिलेखना के समय का निरूपण किया गया है। उसका व्याख्यान करते हुए चूर्णिकार और विशेषचूर्णिकार ने जिन आदेशांतरों का अर्थात् प्रतिलेखना के समय से संबंध रखने वाली विविध मान्यताओं का उल्लेख किया है, उनसे भी और अधिक नई-नई मान्यताओं का संग्रह बृहत्कल्प-बृहद्भाष्यकार ने उपर्युक्त गाथा से संबंधित महाभाष्य में किया है, जो याकिनीमहत्तरासूनु आचार्य श्री हरिभद्रसूरिविरचित पंचवस्तुक प्रकरण की स्वोपज्ञवृत्ति में उपलब्ध है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बृहत्कल्प-बृहद्भाष्य के प्रणेता बृहत्कल्पचूर्णि तथा विशेषचूर्णि के प्रणेताओं से पीछे हुए हैं। ये आचार्य हरिभद्रसूरि के कुछ पूर्ववर्ती अथवा समकालीन हैं। अब रही बात व्यवहारभाष्य के प्रणेता की। इस बात का कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि व्यवहारभाष्य के प्रणेता कौन हैं और वे कब हुए हैं? इतना होते हुए भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि व्यवहार-भाष्यकार जिनभद्र के भी पूर्ववर्ती है[१२] इसका प्रमाण यह है कि आचार्य जिनभद्र ने अपने विशेषणवती ग्रन्थ, में व्यवहार के नाम के साथ जिस विषय का उल्लेख किया है, वह व्यवहारसूत्र के छठे उद्देशक के भाष्य में उपलब्ध होता है।[१३] इसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि व्यवहारभाष्यकार आचार्य जिनभद्र से भी पहले हुए हैं।

जैन साहित्य का वृहद् इतिहास,
भाग ३ से साभार

सन्दर्भ

१. गणधरवाद : प्रस्तावना, पृ. २७-४५

२. विविधतीर्थकल्प, पृ. १९

३. जैन-सत्य-प्रकाश, अंक १९६

४. वही

५. पं. श्री दलसुख मालवणिया ने इन शब्दों की मीमांसा इस प्रकार की है"प्रारम्भ में 'वाचक' शब्द शास्त्र-विशारद के लिए विशेष प्रचलित था।....आचार्य जिनभद्र का युग क्षमाश्रमणों का युग रहा होगा , अतः सम्भव है कि उनके बाद के लेखकों ने उनके लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वाचनाचार्य के स्थान पर 'क्षमाश्रमण' पद का उल्लेख किया हो।''

– गणधरवाद : प्रस्तावना, पृ. ३१

६. जैन गुर्जर कविओ, भा. २, पृ. ६६९

७. जीतककल्पचूर्णि, गा. ५–१० (जीतकल्पसूत्र : प्रस्तावना, पृ.६–७)

८. गणधरवाद : प्रस्तावना, पृ. ३२–३३

९. यह चूर्णि अनुयोगद्वार के अंगुल पद पर है जो जिनदास की चूर्णि तथा हरिभद्र की वृत्ति में अक्षरशः उद्धृत है।

१०. निर्युक्तिलघुभाष्य – वृत्युपेत – बृहत्कल्पसूत्र (षष्ठ भाग) : प्रस्तावना, पृ. २०

११. वही, पृ. २०–२१

१२. वही, पृ. २१–२२

१३. सीहो सुदाढ नागो आसग्गीवो य होइ अण्णेसिं ।
सिंहो मिगद्धओ त्ति य होइ वसुदेवचरियम्मि।।
सीहो चेव सुदाढो, जं रायगिहम्मि कविलबडुओ त्ति।
सीसड् बवहारे गोयमोवसमिओ स णिक्खंतो।।

– विशेषणवती, ३३–३४

सीहो तिविट्ठ निहतो, भमिउं रायगिह कबलि बडुगत्ति।
जिणवर कहममणुबसम गोयमोबसम दिक्खा य।।

– व्यवहारभाष्य १९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org